A Pratibha Spandan Journal
SWAR SINDHU
(National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music)
ISSN 2320-7175 (O) | Volume 14, Issue 02, April 2026 (Special Issue)
This paper was presented at the 'Swar Sanskar National Seminar', organized by Swar Sanskar Sangeet Gurukul
Seminar Convener: Dr. Yash Sanjay Dewale (Co-Founder: Swar Sanskar Sangeet Gurukul, Assistant Professor: MSU Baroda)

रस, भाव और संगीत का अंतरसंबंध

Dr. Ashish Vijaykumar Sant
Assistant Professor, Indian Classical Music-Vocal Department, Faculty of Performing Arts, The M.S. University

Read the Article Online
OPEN ACCESS
Published on 30 April, 2026

सार

रस, भाव और संगीत का संबंध अत्यंत गहन, सूक्ष्म और आध्यात्मिक है। ये तीनों भारतीय कला-दर्शन की त्रिवेणी के समान हैं—भाव आधार है, संगीत उसका माध्यम है और रस उसकी चरम परिणति। जब भाव नाद और लय के माध्यम से अभिव्यक्त होकर सहृदय के हृदय में परिपक्व होता है, तब अलौकिक आनन्द की अनुभूति होती है, जिसे रस कहते हैं। रस केवल बौद्धिक विचार नहीं, बल्कि हृदय की अनुभूति है। साहित्य शब्द और अर्थ के द्वारा भाव व्यक्त करता है, जबकि संगीत उन्हीं भावों को और अधिक सूक्ष्म, व्यापक और प्रभावशाली बना देता है। जहाँ शब्द सीमित हो जाते हैं, वहाँ स्वर अनंत संभावनाएँ खोल देते हैं। कलाकार की साधना तभी पूर्ण मानी जाती है जब उसमें तकनीकी कौशल के साथ भाव-संवेदनशीलता भी हो। भावविहीन प्रस्तुति शुष्क प्रतीत होती है, जबकि भावपूर्ण गायन श्रोता को आत्मविस्मृति की अवस्था तक पहुँचा सकता है। इसी प्रकार सहृदय श्रोता भी रस-निष्पत्ति में सहभागी होता है। अंततः कहा जा सकता है कि रस, भाव और संगीत केवल कला के अंग नहीं, बल्कि जीवन-दर्शन के भी आधार हैं। इनका समन्वय ही कला की पूर्णता और मानव-जीवन के परम आनन्द का मार्ग प्रशस्त करता है। यही रस की अखंड, अभेद और शाश्वत सत्ता है।

मुख्य शब्द: रस –परमानन्द , भाव –आधार , संगीत –नादलय , साहित्य –शब्दार्थ , राग – रंजन ,रसानुभूति –अलौकिकता

प्रस्तावना

भारतीय कला-दर्शन में 'रस, भाव और संगीत' का संबंध अत्यंत गहन, सूक्ष्म और आध्यात्मिक माना गया है। यह विषय केवल कलात्मक अभिव्यक्ति तक सीमित नहीं, बल्कि मानव-हृदय की अनुभूतियों, संवेदनाओं और परम आनन्द की खोज से भी जुड़ा हुआ है। भारतीय परंपरा में कला का उद्देश्य मात्र मनोरंजन नहीं, बल्कि आत्मानुभूति और चित्त की परिष्कृति है। इसी दृष्टि से रस, भाव और संगीत को एक त्रिवेणी के रूप में देखा जाता है, जहाँ भाव मूल स्रोत है, संगीत उसका अभिव्यक्तिमय माध्यम है और रस उसकी चरम परिणति के रूप में प्रकट होता है।

प्राचीन आचार्यों, विशेषतः भरतमुनि, अभिनवगुप्त तथा शारंगदेव ने अपने ग्रंथों में इन तीनों तत्त्वों के पारस्परिक संबंध का अत्यंत सूक्ष्म एवं वैज्ञानिक विश्लेषण किया है। इनके अनुसार, जब मन में उत्पन्न भाव कला के माध्यम से व्यक्त होकर सहृदय के अंतःकरण में आनन्द का रूप धारण करता है, तब रस की अनुभूति होती है।

संगीत, जो नाद और लय पर आधारित है, भावों को अभिव्यक्त करने का अत्यंत प्रभावशाली माध्यम है। जहाँ शब्दों की सीमा समाप्त हो जाती है, वहाँ स्वर अपनी अनंत संभावनाओं के साथ भावों को अधिक गहराई से व्यक्त करते हैं। इस प्रकार रस, भाव और संगीत का अंतर्संबंध न केवल कला की आत्मा है, बल्कि यह मानव-जीवन को सौंदर्य, संवेदना और आध्यात्मिक ऊँचाई प्रदान करने वाला एक महत्वपूर्ण तत्त्व भी है।

इसी परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत विषय का उद्देश्य रस, भाव और संगीत के पारस्परिक संबंध का दार्शनिक, सौंदर्यात्मक और व्यावहारिक विश्लेषण करना है, ताकि इनके माध्यम से कला के वास्तविक स्वरूप और उसके गूढ़ आनंद को समझा जा सके।

रस, भाव और संगीत का अंतर्संबंध

भारतीय कला-दर्शन में रस, भाव और संगीत तीनों ऐसे तत्त्व हैं जो मनुष्य के अंतर्मन की सूक्ष्मतम संवेदनाओं को अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं। साहित्य शब्द और अर्थ के माध्यम से, तथा संगीत नाद और लय के माध्यम से, मानव-हृदय में भावों का संचार करते हैं। जब ये भाव सहृदय श्रोता या पाठक के हृदय में परिपक्व होकर आनन्द का रूप धारण करते हैं, तब उसे 'रस' कहा जाता है। इस प्रकार रस, भाव और संगीत का संबंध शरीर, प्राण और आत्मा के समान है—तीनों परस्पर अभिन्न एवं पूरक हैं। भारतीय परंपरा में कहा गया है—

"नादरूपः स्मृतो ब्रह्मा, नादरूपो जनार्दनः। नादरूपा परा शक्तिः, नादरूपं जगत्त्रयम्॥"

अर्थात् सम्पूर्ण सृष्टि नादमय है। यही नाद जब भाव से संयुक्त होता है तो रस की उत्पत्ति करता है।

1. रस की दार्शनिक एवं काव्यशास्त्रीय संकल्पना

भारतीय काव्यशास्त्र में रस-सिद्धांत का मूल आधार भरतमुनि द्वारा रचित नाट्यशास्त्र है। भरतमुनि ने कहा—

"विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद् रस निष्पत्तिः।"

अर्थात् विभाव, अनुभाव और संचारी (व्यभिचारी) भावों के संयोग से रस की उत्पत्ति होती है।

आचार्य अभिनवगुप्त ने अपनी टीका अभिनवभारती में रस को ब्रह्मानन्द के समकक्ष बताया। वे कहते हैं—

"रसास्वादो ब्रह्मानन्दसहोदरः।"

अर्थात् रस का आस्वादन ब्रह्मानन्द का सहोदर (समतुल्य) है।

बाद में आचार्य अभिनवगुप्त ने 'रसानुभूति' को ब्रह्मानन्द के समतुल्य माना। उनके अनुसार रस का अनुभव लौकिक नहीं, अलौकिक होता है—वह आत्मा की परमानंद अवस्था है।

रस का सामान्य अर्थ है—'आस्वादन'। जिस प्रकार मधुर फल का स्वाद या पुष्प की सुगंध प्रत्यक्ष अनुभव है, उसी प्रकार काव्य और संगीत का रस भी अनुभवजन्य है, वर्णनातीत है।

भारतीय परंपरा में नौ रसों की मान्यता है—

1. शृंगार (स्थायी भाव – रति)
2. वीर (उत्साह)
3. करुण (शोक)
4. रौद्र (क्रोध)
5. हास्य (हास)
6. अद्भुत (विस्मय)
7. भयानक (भय)
8. वीभत्स (जुगुप्सा)
9. शान्त (समत्व/वैराग्य)

ये सभी रस मानव-हृदय की मूल भावनाओं से उत्पन्न होते हैं।

2. भाव का स्वरूप और उसकी प्रक्रिया

'भाव' शब्द की व्युत्पत्ति 'भू' धातु से हुई है, जिसका अर्थ है—'होना' या 'प्रकट होना'।

भरतमुनि ने कहा— "भावो नाम मनोवृत्तिः।"

अर्थात् मन की विशेष वृत्ति ही भाव है।

भाव वह मानसिक स्पंदन है जो किसी घटना, स्मृति, कल्पना या अनुभूति से उत्पन्न होता है। भाव दो प्रकार के माने गए हैं—

स्थायी भाव – जो मन में स्थायी प्रवृत्ति के रूप में विद्यमान रहते हैं।

संचारी (व्यभिचारी) भाव– जो क्षणिक होते हैं और स्थायी भाव को पुष्ट करते हैं।

जब कलाकार अपने हृदय में जाग्रत भावों को कला के माध्यम से व्यक्त करता है और सहृदय श्रोता उनमें तादात्म्य स्थापित करता है, तब रस की अनुभूति होती है। इस स्थिति को स्पष्ट करते हुए एक प्राचीन उक्ति है—

"हृदि संचारिणो भावाः, सहृदयेषु रसात्मकाः।"

अर्थात् हृदय में संचारित भाव सहृदय के अंतःकरण में रस का रूप धारण कर लेते हैं। भाव बीज है और रस उसका पुष्पित-फलित रूप। भाव बीज है और रस उसका पुष्पित-फलित रूप। बिना भाव के रस की सृष्टि संभव नहीं।

3. संगीत का तात्त्विक आधार : नाद, स्वर और लय

संगीत का मूल तत्त्व 'नाद' है। शास्त्रों में कहा गया है—

"नादात् बिन्दुः समुत्पन्नो, बिन्दोर्नादः प्रजायते।"

नाद से ही सृष्टि की उत्पत्ति मानी गई है। शारंगदेव द्वारा रचित संगीत रत्नाकर में नाद, स्वर, राग और ताल का विस्तृत वर्णन मिलता है। वे कहते हैं—

"रञ्जयति इति रागः।"

अर्थात् जो मन को रंजित (आनंदित) करे वही राग है।

लय के विषय में कहा गया है—

"लयः कालस्य जीवनम्।"

लय संगीत को गति, संतुलन और संरचना प्रदान करती है।

यदि साहित्य का आधार शब्द और अर्थ है, तो संगीत का आधार नाद और लय है। शब्द और अर्थ के बिना साहित्य अधूरा है, और नाद-लय के बिना संगीत असंभव।

4. साहित्य और संगीत का ऐतिहासिक संबंध

वैदिक काल में सामवेद के मंत्र संगीतमय ढंग से गाए जाते थे—

"साम्नां गायनं प्रीतिकरम्।"

भारतीय संगीत के विकास में साहित्य की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। वैदिक युग में सामगान के रूप में मंत्रों का संगीतमय उच्चारण होता था। मध्यकाल में भक्ति आंदोलन के साथ संगीत और साहित्य का अद्भुत समन्वय दिखाई देता है।

संत कवियों तुलसीदास, सूरदास, मीरा बाई, कबीर की रचनाएँ संगीत के माध्यम से जन-जन तक पहुँचीं। ध्रुपद शैली में शब्द-प्रधानता थी, जहाँ भाव की गंभीरता और स्पष्ट उच्चारण पर बल दिया जाता था। इस संतुलन को स्पष्ट करने हेतु एक श्लोक दृष्टव्य है—

"शब्दार्थौ सहितौ काव्यं, स्वरतालौ तथा गीते।

उभयोः सम्यग्योगेन, जायते रससंपदा॥"

अर्थात् जैसे काव्य में शब्द और अर्थ का समन्वय आवश्यक है, वैसे ही गीत में स्वर और ताल का संतुलन ही रस-संपदा को जन्म देता है। बाद में ख्याल शैली में स्वर-विस्तार, तानों और आलापों का प्राधान्य बढ़ा। इससे कहीं-कहीं शब्द गौण हो गए और राग-विस्तार मुख्य हो गया।

संतुलन की आवश्यकता

* शब्दों की उपेक्षा से भाव की हानि होती है।
* अत्यधिक शब्द-प्रधानता से राग की स्वतंत्रता बाधित होती है।
* उचित संतुलन ही रस की सृष्टि करता है।

5. संगीत में रस की निष्पत्ति के तत्त्व

संगीत में रस का अनुभव केवल राग से नहीं, बल्कि अनेक घटकों के समन्वय से होता है—

1. प्रस्तुति का वातावरण
2. राग-समय
3. गायक का व्यक्तित्व एवं कंठ
4. गायन-शैली
5. वाद्य-संगति
6. श्रोताओं की मानसिक स्थिति
7. स्वर-लय का संतुलन
8. सह-गायकों का प्रभाव

जब ये सभी तत्त्व समन्वित होते हैं, तब श्रोता आत्मविस्मृति की अवस्था में पहुँच जाता है—यही रस की चरम परिणति है।

"यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता।"

जिस प्रकार वायु-रहित स्थान में दीपक स्थिर रहता है, उसी प्रकार एकाग्र चित्त में ही रस की अनुभूति संभव है।

6. राग और रस का संबंध

प्रत्येक राग का एक विशिष्ट भाव-पक्ष होता है—

* भैरव – गाम्भीर्य एवं शान्ति

* दरबारी – करुण एवं गूढ़ता
* यमन – माधुर्य एवं शृंगार
* मालकौंस – वीर एवं अद्भुत

हालाँकि राग-रस संबंध स्थायी नियम नहीं, परंतु परंपरा में यह अनुभव-सिद्ध माना गया है।

जब कलाकार राग में तन्मय होता है, तब रस का पृथक बोध नहीं रहता—केवल आनन्द शेष रहता है।

"तन्मयो भवति गायकः, श्रोता च तदनुगतः।
उभयोरैक्यसम्भूतो, रस एव प्रकाशते॥"

7. कलाकार और सहृदय का संबंध

कलाकार रस का प्रथम अनुभव स्वयं करता है। यदि कलाकार के अंतःकरण में भाव जागृत नहीं, तो श्रोता तक रस नहीं पहुँच सकता।

इस संदर्भ में कहा गया है—

"स्वयं रसज्ञो यो गायकः, स एव रसदायकः।"

अर्थात् जो स्वयं रसज्ञ है वही दूसरों को रस प्रदान कर सकता है। अतः कलाकार को—

* भाव-संवेदनशील होना चाहिए।
* साहित्य और संगीत दोनों का ज्ञान होना चाहिए।
* अहंकार से मुक्त रहना चाहिए।

रस तभी उत्पन्न होगा जब कलाकार और श्रोता के हृदय में सामंजस्य स्थापित हो।

उपसंहार

रस, भाव और संगीत का संबंध अत्यंत गहन, सूक्ष्म और आध्यात्मिक है। ये तीनों भारतीय कला-दर्शन की त्रिवेणी के समान हैं—भाव आधार है, संगीत उसका माध्यम है और रस उसकी चरम परिणति। जब भाव नाद और लय के माध्यम से अभिव्यक्त होकर सहृदय के हृदय में परिपक्व होता है, तब अलौकिक आनन्द की अनुभूति होती है, जिसे रस कहते हैं। रस केवल बौद्धिक विचार नहीं, बल्कि हृदय की अनुभूति है। साहित्य शब्द और अर्थ के द्वारा भाव व्यक्त करता है, जबकि संगीत उन्हीं भावों को और अधिक सूक्ष्म, व्यापक और प्रभावशाली बना देता है। जहाँ शब्द सीमित हो जाते हैं, वहाँ स्वर अनंत संभावनाएँ खोल देते हैं। कलाकार की साधना तभी पूर्ण मानी जाती है जब उसमें तकनीकी कौशल के साथ भाव-संवेदनशीलता भी हो। भावविहीन प्रस्तुति शुष्क प्रतीत होती है, जबकि भावपूर्ण गायन श्रोता को आत्मविस्मृति की अवस्था तक पहुँचा सकता है। इसी प्रकार सहृदय श्रोता भी रस-निष्पत्ति में सहभागी होता है। अंततः कहा जा सकता है कि रस, भाव और संगीत केवल कला के अंग नहीं, बल्कि जीवन-दर्शन के भी आधार हैं। इनका समन्वय ही कला की पूर्णता और मानव-जीवन के परम आनन्द का मार्ग प्रशस्त करता है। यही रस की अखंड, अभेद और शाश्वत सत्ता है।

संदर्भ ग्रंथ

1. नाट्यशास्त्र – भरतमुनि
2. अभिनवभारती – अभिनवगुप्त
3. संगीत रत्नाकर – शारंगदेव
4. संगीत पारिजात – अहोबल
5. भक्ति रसामृत सिंधु – रूप गोस्वामी